भारत सरकार अधिनियम-1919 [भाग-2]

प्रांतीय सूची के विषय थे: स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन, शिक्षा, चिकित्सा, भूमिकर, जल संचय, अकाल, शांति एवं व्यवस्था, कृषि इत्यादि। जो विषय स्पष्ट हस्तांतरित नहीं किये गये वे सभी केन्द्रीय माने गये।

* **विधान संबंधी परिवर्तन:-** 1919 के ऐक्ट ने केन्द्र में एकसदनीय साम्राज्यिक विधान परिषद् (Imperial Legislative Council) के स्थान पर द्विसदनीय व्यवस्था लागू की गई। एक सदन 'राज्य परिषद' (Council of State) और दूसरा सदन केन्द्रीय विधान सभा (Central Legislative Assembly) कहलाया।

राज्य परिषद (उपरी सदन) में सदस्यों की संख्या 60 सदस्य होते थे जिसमें 34 निर्वाचित तथा 26 सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत किये जाते थे। 34 निर्वाचितों में से 20 साधारण निर्वाचन क्षेत्र से चुने जाते जबकि 10 मुसलमानों, 3 यूरोपीय तथा एक सिक्ख द्वारा चुने जाते। 26 मनोनीतों में से 19 पदाधिकारी तथा 07 अशासकीय होते थे। इस राज्य परिषद का प्रतिवर्ष आंशिक नवीनीकरण होता यद्यपि ये सदस्य 5 वर्षों के लिए बनते थे। इसका प्रधान वायसराय द्वारा नियुक्त होता था। स्त्रियाँ सदस्यता के लिए उपयुक्त नहीं समझी गई। गवर्नर-जनरल इस सदन को बुला स्थगित अथवा भंग कर सकता था। मताधिकार बहुत सीमित था।

निम्न सदन को 'केन्द्रीय विधान सभा' का नाम दिया गया। इसके कुल सदस्यों की संख्या 145 निर्धारित थी जिसमें से 104 निर्वाचित तथा 41 मनोनीत होने थे। 104 निर्वाचित सदस्यों में 52 साधारण निर्वाचन क्षेत्रों में से, 32 साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र (30 मुसलमान तथा 2 सिक्ख) और 20 विशेष निर्वाचन क्षेत्रों (07 भूमिपतियों द्वारा, 09 यूरोपीय द्वारा, 04 भारतीय व्यापार समुदायों) द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। 41 मनोनीत सदस्यों में 26 सदस्य शासकीय तथा 15 अशासकीय होने थे। केन्द्रीय विधान सभा का कार्यकाल 03 वर्षों का होता जिसे गवर्नर-जनरल बढ़ा भी सकता था।

वित्त संबंधी मामलों को छोड़कर अन्य सभी मामलों में

केन्द्रीय विधानमंडल के दोनों सदनों को बराबर शक्तियाँ प्राप्त थी। केन्द्रीय सूची में उल्लिखित सभी विषयों पर ब्रिटिश भारत की जनता के लिए कानून बनाने की शक्ति विधानमंडल को प्राप्त थी कुछ मामलों में कानून बनाने के पूर्व गवर्नर जनरल की अनुमति आवश्यक थी। सदस्यों को प्रस्ताव तथा स्थगन प्रस्ताव लाने की अनुमति थी। प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पर कोई रोक नहीं था सदस्यों को बोलने का अधिकार तथा स्वतंत्रता प्राप्त था। वित्त विधेयक पारित कराने के लिए राज्य-परिषद् के मत की आवश्यकता न थी।

केन्द्रीय विधानमंडल में दोनों सदनों में गतिरोध की दशा में गवर्नर जनरल दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता था जहाँ बहुमत से निर्णय लिया जाता। गवर्नर-जनरल किसी भी विधेयक पर विचार-विमर्श रोक सकता था अथवा पारित किया हुआ घोषित कर सकता था। संकटकाल में उसे 'अध्यादेश' की शक्ति भी प्राप्त थी जिसकी वैधता छः माह की होती थी। इस प्रकार गवर्नर जनरल की शक्ति का विस्तार किया गया।

* प्रांतीय प्रशासन :- प्रांतों में द्वैध शासन (Dyarchy) इस अधिनियम की मुख्य विशेषता थी। Dyarchy ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है - "एक ऐसी सरकार जिसमें सर्वोच्च शक्ति संयुक्त रूप से दो व्यक्तियों या दो राज्यों या दो संस्थाओं को प्रदान की गई हो।" इस योजना के तहत प्रांतीय विषयों को दो उपवर्गों में विभाजित किया गया - आरक्षित विषय (Reserved Subjects) तथा हस्तांतरित विषय (Transferred Subjects)। गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी परिषद् (मनोनीत सदस्य) के सदस्यों को आरक्षित विषयों का प्रशासन करना था जबकि हस्तांतरित विषयों का प्रशासन गवर्नर को मंत्रियों के साथ मिलकर करना था। ये लोग सदन के प्रति उत्तरदायी थे परंतु गवर्नर की इच्छा पर ही पदों पर बने रह सकते थे। सपरिषद् राज्य-सचिव तथा सपरिषद् गवर्नर-जनरल को इन विषयों में हस्तक्षेप का अधिकार सीमित था।

मुख्यतः चार विषयों स्थानीय स्वायत्त शासन, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा कृषि को संबंधित विषय हस्तांतरित विषयों में शामिल किये गये। शेष सभी विषय जिनमें पुलिस, न्याय, सिंचाई

तथा जलमार्ग, मुराब्दव, कारखाने, सार्वजनिक सेवाएँ को सुरक्षित विषयों में शामिल किया गया।

आरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर चार सदस्यीय कार्यकारिणी परिषद् की सहायता से चलाया करता था। व्यावहारिक रूप से चार सदस्यों में दो भारतीय ही हुआ करते थे। गवर्नर एवं उसके कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त होते थे और वे गवर्नर जनरल तथा भारत सचिव के प्रति संयुक्त रूप से उत्तरदायी थे। मंत्रीगण जिनको हस्तांतरित विषय सौंपे गये थे गवर्नर द्वारा नियुक्त किये जाते थे। गवर्नर आमतौर पर मंत्रियों को विधानसभा के प्रमुख निर्वाचित सदस्यों में ही चुनते थे। व्यवहार में प्रत्येक प्रांत में दो या तीन मंत्री होते थे। मंत्रीगणों का कार्यकाल गवर्नर की इच्छा पर निर्भर था।

गवर्नर जनरल को तथा गवर्नर निषेधाधिकार (veto) की शक्ति तो पहले से ही प्राप्त थी। इस अधिनियम के द्वारा विधि-निर्माण के क्षेत्र में अभिभाव शक्ति अथवा पॉवर ऑफ सर्टिफिकेशन प्राप्त हुआ। इसका तात्पर्य यह था कि वह किसी भी विधेयक को कानून बना सकता था जो उसकी दृष्टि में आवश्यक हो भले ही सदन उसे नामंजूर कर दिया हो।

1919 के ऐक्ट को मूलत: आठ प्रांतों मद्रास, बम्बई बंगाल, संयुक्त प्रांत, पंजाब, बिहार और उड़ीसा, मध्य प्रांत और असम में लागू किया। सन् 1923 में इसकी व्यवस्थाओं का विस्तार बर्मा और कुछ समय बाद उ.प. सीमाप्रांत तक कर दिया गया।

प्रांतीय परिषदों को अब 'विधान परिषद' (Legislative Council) की संज्ञा दी गयी। इसमें गवर्नर की कार्यकारिणी, निर्वाचित सदस्य और मनोनीत सदस्य होते थे यह भी व्यवस्था की गई कि काउंसिल के कम से कम 70% सदस्य निर्वाचित हो और सरकारी सदस्य अधिक से अधिक 20%। इन विधानसभाओं का आकार काफी बढ़ा दिया गया और यह एक प्रांत से दूसरे प्रांत में भिन्न थी। अधिकतम सदस्य बंगाल में कुल 140 थे तथा न्यूनतम आसाम में कुल 53 थे।

निर्वाचित सदस्यों को सीधे चुनाव द्वारा चुना जाता अर्थात् प्राथमिक मतदाता ही सदस्य चुनते थे। मताधिकार मुख्य रूप से सम्पत्ति विषयक योग्यता विषयक पर आधारित था। 1920 में महज

5 प्रतिशत से भी कम लोगों को मताधिकार मिला। महिलाओं को यह अधिकार प्राप्त नहीं था। यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन में भी 1918 में महिलाओं को मताधिकार मिला था।

इस अधिनियम के द्वारा भारत में पहली बार लोक सेवा आयोग की स्थापना का प्रावधान किया गया।

इसी अधिनियम के खंड-V में अधिनियम के पारित होने के 10 वर्षों बाद शासन व्यवस्था की कार्यप्रणाली की जाँच के लिए एक वैधानिक आयोग नियुक्त करने के संबंध में प्रावधान रखा गया तथा इसी के तहत 1927 में साइमन कमीशन की नियुक्ति की गई।

पृथक निर्वाचन मंडल का दायरा बढ़ाकर इसे पंजाब में सिक्खों, भारतीय इसाईयों, एंग्लो इंडियनों तथा कुछ प्रांतों में यूरोपियनों तक विस्तृत कर दिया गया।

मूल्यांकन

1919 के अधिनियम के संदर्भ में कैम्ब्रिज स्कूल के नवसाम्राज्यवादी इतिहासकारों का विचार है कि निर्वाचक मंडल के विस्तार से भारतीय जनता ने राष्ट्रीय आंदोलन में अधिकाधिक रूप से भाग लिया और राजनीतिज्ञों को प्रजातांत्रिक प्रणाली से परिचित कराया गया। कैम्ब्रिज इतिहासकारों के ये विचार एकपक्षीय एवं पूर्वाग्रहग्रस्त है, क्योंकि प्रजातांत्रिक कार्यप्रणाली से परिचित कराने की बात केवल कुछ राजनीतिज्ञों के मामले में सही मानी जा सकती है। जहाँ तक निर्वाचक मंडल का प्रश्न है प्रांतीय विधान-सभाओं के लिए मतदाताओं या निर्वाचकों की संख्या 55 लाख थी और केन्द्रीय विधानसभा के लिए तो यह केवल 5 लाख था, जो संख्या की दृष्टि से बिल्कुल नाममात्र ही थी।

यह सही है कि ऐक्ट ने केन्द्र तथा प्रांतों में निर्वाचित वैधानिक संस्थाओं का निर्माण किया। इन संस्थाओं द्वारा भारतीयों की राय निरंतर एवं स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई जिससे साम्राज्यवाद विरोधी भावना को बल मिला। चुनाव एवं दलगोष्ठियों के आयोजन से भारतीय संसदीय शब्दावली एवं संस्थाओं से परिचित हुये।

1919 के अधिनियम की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता प्रांतों में 'द्वैध शासन' की व्यवस्था थी जो पूर्णतया एक दोषपूर्ण प्रणाली थी। किसी सरकार या राज्यों के कार्यों को दो सर्वथा पृथक एवं एक दूसरे से पूर्ण स्वतंत्र खंडों में

विभाजित करना कठिन काम था। उदाहरण - कृषि हस्तांतरित विषय था जबकि भूराजस्व एवं सिंचाई सुरक्षित। इसी प्रकार यूरोपीय तथा ऐंग्लो-इंडियन की शिक्षा, शिक्षामंत्री के अधिकार के बाहर था। मंत्रीगण अपने देशवासियों के हितार्थ सोच रखते थे जबकि सिविल सेवा के सदस्य ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों के रक्षार्थ सोच रखते थे।

हस्तांतरित विषयों में सिविल सेवकों पर मंत्रियों का नियंत्रण नहीं होता क्योंकि प्रशासनिक सेवा पूर्णतः भारत-सचिव के नियंत्रण में थी। विवाद की स्थिति में गवर्नर बहुधा सिविल सेवकों का पक्ष लेता था क्योंकि वह उन्हीं में से एक था।

द्वैध शासन में वित्त व्यवस्था 'कार्यपालिका परिषद्' के एक सदस्य के अधीन था जिसके कारण आरक्षित विषयों के प्रति उदारता एवं हस्तांतरित विषयों के प्रति उपेक्षा की नीति अपनाई गई।

द्वैध शासन की असफलता के अध्ययन हेतु 1924 में गठित "मुडमैन समिति" ने भी निम्नलिखित कारण बतलाये :-

(i) प्रांतीय विषयों के विभाजन का कोई तर्कसंगत आधार नहीं था,
(ii) मंत्रियों में संयुक्त उत्तरदायित्व का अभाव था, उन्हें वास्तविक शक्ति से वंचित रखा गया था,
(iii) हस्तांतरित विषयों को लागू करने में वित्तीय कठिनाइयाँ थीं,
(iv) नौकरशाही तथा भारतीय सेवा के सदस्य मंत्रियों के साथ आवश्यक सहयोग नहीं कर पा रहे थे।

—X—